10

जैन इतिहास के प्रसंग

सुधर्मा स्वामी

प्रकाशक
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

पुस्तक :

जैन इतिहास के प्रसंग

भाग–10

(सुधर्मा स्वामी)

प्रेरणास्रोत :

आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.

द्वारा निर्देशित ***जैन धर्म का मौलिक इतिहास***

तथा श्री गजसिंह जी राठौड़ आदि विद्वज्जनों द्वारा

सम्पादित के आधार पर

सम्पादक :

डॉ. दिलीप धींग

प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल

बापू बाजार, जयपुर–3 (राजस्थान)

फोन नं. 0141–2575997, 2571163

फैक्स : 0141–2570753 Email : sgpmandal@yahoo.in

द्वितीय संस्करण : 2013

मुद्रित प्रतियाँ : 1100

मूल्य : **5/-** (पाँच रुपये मात्र)

मुद्रक : **दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर**

:: अन्य प्राप्ति स्थल ::

- **श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ**
  घोड़ों का चौक, **जोधपुर–342001**
  (राजस्थान) फोन: 0291 – 2624891

- **Shri Navratan ji Bhansali**
  C/o. Mahesh Electricals,
  14/5, B.V.K. Ayangar Road,
  BANGALORE-560053
  (Karnataka)
  Ph. : 080-22265957
  Mob. : 09844158943

- **Shri B. Budhmal ji Bohra**
  C/o. Bohra Syndicate,
  53, Erullapan Street,
  Sowcarpet, **CHENNAI-79**
  (Tamilnadu)
  Ph. : 044-26425093
  Mob. : 09444235065

- **श्रीमती विजया जी मल्हारा**
  रतन सागर बिल्डिंग, कलेक्टर बंगला रोड,
  चर्च के सामने, **जलगाँव–425001**
  (महाराष्ट्र) फोन : 0257–2225903

- **श्री दिनेश जी जैन**
  1296, कटरा धुलिया,
  चाँदनी चौक, दिल्ली–110006
  फोन: 011–23919370 मो. : 09953723403

प्रकाशकीय

भारतीय श्रमण-परम्परा में आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. को उनके बहुआयामी अवदानों तथा उपकारों के लिए जाना जाता है। उनके द्वारा निर्देशित 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' (चार भाग) न सिर्फ श्रमण संस्कृति, अपितु भारतीय संस्कृति और इतिहास के लिए अगणित तथ्यों और जानकारियों से भरा उपयोगी दस्तावेज है। सुदूर अतीत में हुए प्रमुख व्यक्तियों और घटनाओं की तथ्य पूर्ण प्रस्तुति अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इतिहास मनीषी आचार्य हस्ती के साधनामय तथा पाद-विहारी जीवन के दो दशकीय अथक श्रम और सतत शोध के फलस्वरूप करीब साढ़े तीन हजार पृष्ठों में इस इतिहास की प्रस्तुति सम्भव हुई। अपनी विलक्षण शोध-दृष्टि, विश्लेषण-क्षमता और प्रमाणों के आलोक में आचार्यश्री ने एक ओर इतिहास सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियों का निराकरण किया, दूसरी ओर कई नये तथ्यों से हमें अवगत कराया। जहाँ, वे कोई निर्णय नहीं कर पाए, वहाँ उन्होंने यह निर्देश कर दिया कि 'इस सम्बन्ध में और भी शोध की आवश्यकता है।' उनके इस प्रकार के निर्देश में उनकी शोधप्रियता और शोध-की-प्रेरणा छिपी हुई है। उनके द्वारा प्रस्तुत जैन इतिहास समस्त संस्कृति-प्रेमी और इतिहास-प्रेमी जिज्ञासुओं को आकर्षित करता है।

जैन इतिहास बहुत ही रोचक और व्यापक विषय है। इसमें अनेक प्रेरक तथ्य, कथाएँ, घटनाएँ और प्रसंग भरे पड़े हैं। ये छोटे-बड़े प्रसंग जीवन, जगत्, समाज, आचार, विचार, परम्पराएँ, समय, इतिहास आदि के बारे में अनेक प्रकार के संकेत और निर्देश करते हैं। कथात्मक होने से ऐसे प्रसंग हमेशा के लिए मानस पटल पर अंकित हो जाते हैं और जीवन की अनजानी और अन्धियारी राहों में पथ-प्रदीप बनकर मार्गदर्शक बनते हैं।

आज की व्यस्त जिन्दगी में सारे इतिहास को आद्योपान्त पढ़ना सबके लिए सहूलियत भरा नहीं है। ज्ञानवर्द्धन, संस्कार-जागरण और जीवन-निर्माण के लिए अल्प मूल्य की छोटी-छोटी किताबों की उपयोगिता सर्वविदित है। आचार्य हस्ती जन्म शताब्दी के पुनीत अवसर पर हमारा विचार बना कि जैन इतिहास के रोचक और प्रेरक प्रसंगों की छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ तैयार की जाएँ, जिससे अधिकाधिक पाठकों तक प्रेरक ऐतिहासिक प्रसंग पहुँच सकें। ऐसा करने से सभी आयु और रुचि के पाठक वर्ग में इनकी पठनीयता बढ़ेगी। अल्प मूल्य की इन छोटी-छोटी पुस्तिकाओं को किसी अवसर विशेष पर बड़ी संख्या में वितरित करके हमारे इस अभिनव प्रयास का विशेष मूल्यांकन भी किया जा सकता है।

पूज्य आचार्यप्रवर के मार्गदर्शन में विद्वद्वरेण्य श्री गजसिंह जी राठौड़ एवं सम्पादक-मण्डल के सहयोग से **'जैन धर्म का मौलिक इतिहास'** के जो चार भाग तैयार हुए, उनकी महत्ता

विश्वविद्यालयों के सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में आज भी विद्यमान है। तथापि इन चारों भागों की विषय-वस्तु सर्वजनग्राह्य हो, इस दृष्टि से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के अध्यक्ष श्री पी. शिखरमल जी सुराणा, चेन्नई के सत्प्रयासों से मौलिक इतिहास के संक्षिप्तीकरण का कार्य प्रारम्भ हुआ। डॉ. दिलीप जी धींग (उदयपुर वाले), बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने चेन्नई आने के पश्चात् अल्पावधि में ही मौलिक इतिहास के विभिन्न इतिहास प्रसंगों को लघुखण्डों में संयोजित एवं सम्पादित कर दिया।

प्रस्तुत पुस्तक में भगवान महावीर के प्रथम पट्टधर आचार्य सुधर्मा स्वामी तथा द्वादशांगी का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

लाखों श्रद्धालुओं के हृदयपटल में सतत बसने वाले आचार्य प्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. एवं उपाध्याय प्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा. का दीक्षा अर्द्धशती वर्ष मनाया जा रहा है। इस अवसर पर 'जैन इतिहास के प्रसंग' के विभिन्न भागों को प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त प्रमोद अनुभव हो रहा है।

ह्न:: निवेदक ::ह्न

कैलाशमल दुगड	**सम्पतराज चौधरी**	**विनयचन्द डागा**
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

अनुक्रमणिका

क्रम	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	आर्य सुधर्मा	7
2.	सुधर्मा स्वामी ही उत्तराधिकारी क्यों?	11
3.	उपलब्ध एकादशांगी आर्य सुधर्मा की वाचना	14
4.	द्वादशांगी का परिचय	17
5.	आचारांग	18
6.	आचारांग का स्थान एवं महत्व	23
7.	सूत्रकृतांग	25
8.	स्थानांग	27
9.	समवायांग	28
10.	व्याख्याप्रज्ञप्ति	31
11.	ज्ञाताधर्मकथा	34
12.	उपासकदशा	36
13.	अंतगडदशा	38
14.	अनुत्तरोपपातिक दशा	40
15.	प्रश्नव्याकरण	41
16.	विपाक सूत्र	42
17.	दृष्टिवाद	43
18.	इतिहास पुरुष आचार्य हस्ती	46

आर्य सुधर्मा

आर्य सुधर्मा स्वामी का जन्म ईसा से 607 वर्ष पूर्व, विदेह प्रदेश के कोल्लाग नामक ग्राम में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुआ। उनके पिता का नाम धम्मिल्ल और माता का नाम भद्दिला था। अग्नि वैश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण आर्य धम्मिल्ल वेद-वेदांग के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् थे। सुधर्मा ने अपने विद्यार्थी जीवन में चार वेदों ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद तथा छह वेदांगों शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छंद और ज्योतिष एवं चार उपांग मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण एवं इन चौदह विद्याओं का सम्यक् रूपेण अभ्याय किया। पारगामी विद्वान् बनने के पश्चात् उन्होंने अध्यापन का कार्य प्रारंभ किया। 500 विद्यार्थी सदा उनकी सेवा में रहकर उनसे विद्याध्ययन करते थे। यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि वे प्रकाण्ड पण्डित होने के साथ-साथ पर्याप्त रूपेण साधन सम्पन्न एवं समृद्ध भी थे।

सकल शास्त्र के पारगामी होने पर भी उन्हें अपनी विशाल ज्ञानराशि में एक प्रकार की न्यूनता, अपूर्णता एवं

रिक्तता का अनुभव होता था। वे सत्य की गवेषणा में सतत् प्रयत्नशील थे। जब उन्हें भगवान महावीर के प्रथम दर्शन हुए तो उनके मानस में आशा की किरण प्रस्फुटित हुई और उन्हें यह अनुभव हुआ कि उनकी वह रिक्तता, अपूर्णता भगवान महावीर के द्वारा अवश्य ही पूर्ण कर दी जायेगी।

आर्य सुधर्मा ने जब यह सुना कि इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति और आर्य व्यक्त जैसे उच्चकोटि के विद्वान् अपने-अपने मन की शंकाओं का समाधान पाकर भगवान महावीर के पास श्रमण धर्म में दीक्षित हो गये हैं तो उनके मन में भी उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई कि क्यों न वे सर्वज्ञ प्रभु महावीर से अपने मन में चिरकाल से संचित निगूढ शंका का समाधान कर लें। वे तत्काल अपने 500 शिष्यों के साथ प्रभु के समक्ष समवसरण में पहुँचे। उन्होंने श्रद्धावनत हो प्रभु के चरणों में नमन किया।

भगवान महावीर ने नाम-गोत्रोच्चारण पूर्वक आर्य सुधर्मा को संबोधित करते हुए कहा - आर्य सुधर्मन्! तुम्हारे मन में यह शंका है कि प्रत्येक जीव वर्तमान भव में मनुष्य,

तिर्यंच आदि जिस गति में है, वह मरने के पश्चात् भावी भवों में भी क्या उसी गति में, उसी प्रकार के शरीर में उत्पन्न होगा? अपनी इस शंका की पुष्टि में तुम मन ही मन यह युक्ति देते हो कि जिस प्रकार एक खेत में जौ बोये जायें तो जौ, गेहूँ बोये जायें तो गेहूँ पैदा होंगे। यह संभव नहीं कि जौ बोने पर गेहूँ उत्पन्न हो जायें अथवा गेहूँ बोने पर जौ उत्पन्न हो जायें। सौम्य सुधर्मन्! तुम्हारी यह शंका वस्तुतः समुचित नहीं है। क्योंकि प्रत्येक प्राणी त्रिकरण एवं त्रियोग से जिस प्रकार की अच्छी अथवा बुरी क्रियाएँ करता है, उन्हीं कार्यों के अनुसार उसे भावी भवों में अच्छी अथवा बुरी गति, शरीर, सुख-दुःख, संपत्ति-विपत्ति, संयोग-वियोगादि की प्राप्ति होती रहती है और कृतकर्मजन्य यह क्रम अजस्रूपेण निरंतर तब तक चलता रहता है जब तक कि वह आत्मा अपने अच्छे-बुरे सभी प्रकार के समस्त कर्मों का समूल नाश कर शुद्ध-बुद्ध-मुक्त नहीं हो जाता।

एक प्राणी जिस योनि में है, वह यदि उसी योनि में उत्पन्न कराने वाले कर्मों का बन्ध करे तो पुनः उस योनि में भी

उत्पन्न हो सकता है, पर एकान्तत: यह मानना सत्य नहीं है कि जो प्राणी वर्तमान में जिस योनि में है, वे सदा सर्वदा के लिये निरंतर उसी योनि में उत्पन्न होता रहे।

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान महावीर के मुखारविन्द से अपने अन्तर्मन की निगूढतम शंका और उसका समाधान सुनकर सुधर्मा आश्चर्याभिभूत हो गये। भगवान महावीर की तर्कसंगत एवं युक्तिपूर्ण अमोघ वाणी से अपने संदेह का संपूर्ण रूप से समाधान होते ही आर्य सुधर्मा ने परम संतोष का अनुभव करते हुए अपने 500 शिष्यों सहित श्रमण-दीक्षा ग्रहण कर अपने आपको प्रभु चरण-शरण में समर्पित कर दिया।

भगवान महावीर से त्रिपदी का ज्ञान सुनते ही वे अथाह ज्ञान के भण्डार बन गये। उन्होंने सर्वप्रथम 14 पूर्वों की रचना की और तदनन्तर द्वादशांगी का ग्रंथन किया। आज जो आचारांगादि एकादशांग उपलब्ध हैं, वे आर्य सुधर्मा की वाचना के ही माने जाते हैं।

आर्य सुधर्मा ने 50 वर्ष की अवस्था में भगवान

महावीर के पास श्रमण दीक्षा ग्रहणकर तप संयम की आराधना और निरंतर 30 वर्ष तक एक परम विनीत शिष्य के रूप में भगवान की आज्ञा का पालन करते हुए गण की महती सेवा की। प्रभु के पश्चात् प्रभु के प्रथम पट्टधर के रूप में 20 वर्ष तक संघाधिनायक रहकर संघ का संचालन किया। वी. नि. सं. 12 में इन्द्रभूति गौतम के निर्वाण के पश्चात् उन्होंने चार घाति कर्मों का क्षयकर केवलज्ञान प्राप्त किया। 9 वर्ष तक केवली रूप में रहे।

अंत में वी. नि. सं. 20 के अंतिम चरण में ईसा से 507 वर्ष पूर्व राजगृह नगर के गुणशील चैत्य में एक मास के पादोपगमन संथारे से 100 वर्ष की आयु पूर्णकर अपने जीवन का चरम और परम लक्ष्य – निर्वाण प्राप्त किया।

सुधर्मा स्वामी ही उत्तराधिकारी क्यों ?

ईसा से 527 वर्ष पूर्व कार्तिक कृष्णा अमावस्या की रात्रि में भगवान महावीर का निर्वाण हुआ। भगवान के निर्वाण के पश्चात् उसी रात्रि को इन्द्रभूति गौतम ने केवल ज्ञान की

उपलब्धि की। दूसरे ही दिन कार्तिक शुक्ला 1 के दिन आर्य सुधर्मा को भगवान महावीर के प्रथम पट्टधर के रूप में धर्मसंघ का अधिनायक आचार्य नियुक्त किया गया, जिनके निम्न लिखित तीन प्रमुख कारण हैं:-

1. तीर्थंकर भगवान महावीर ने अपने निर्वाण से लगभग 30 वर्ष पूर्व तीर्थ स्थापना के दिन ही आर्य सुधर्मा को दीर्घायु एवं योग्य जानकर गण की अनुज्ञा दी थी। इस बात से चतुर्विध संघ भली भाँति परिचित था।

2. चतुर्विध तीर्थ को यह भी विदित था कि भगवान महावीर की विद्यमानता में ही अग्निभूति आदि 9 केवलज्ञानी गणधरों ने निर्वाण प्राप्त किया। उन्होंने अपने-अपने निर्वाण से एक मास पहले ही आर्य सुधर्मा को गणनायक एवं दीर्घायुष्यमान जानकर अपने-अपने गण संभला दिये थे।

3. इन दो सर्वविदित तथ्यों के अतिरिक्त भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् भगवान के पट्टधर बनने के सभी

दृष्टियों से योग्यतम अधिकारी ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ शिष्य इन्द्रभूति गौतम को कुछ ही समय पश्चात् उसी रात्रि में केवलज्ञान की उपलिब्ध हो चुकी थी अत: वे भगवान के उत्तराधिकारी नहीं बन सकते थे। क्योंकि उत्तराधिकारी अपने पूर्ववर्ती आचार्य आदि के अधिकार को आगे चलाने वाला होता है। पट्टधर अपने-अपने पूर्ववर्ती आचार्य के आदेश, उपदेश और सिद्धांतों को दृष्टि में रखकर उसका प्रचार-प्रसार करने के साथ-साथ अनुयायी समाज से उनकी आज्ञा का पालन करवाते हैं। किन्तु केवलज्ञानी स्वयं समस्त चराचर के पूर्ण ज्ञाता होने से जो कुछ आदेश देते हैं वह वे अपने ज्ञान के आधार से देते हैं, न कि अपने पूर्ववर्ती आचार्य के उपदेश, आदेश के आधार से।

आर्य सुधर्मा स्वामी प्रभु के निर्वाण के समय 14 पूर्व के ज्ञाता थे, केवली नहीं। अत: वे यह कह सकते थे कि - भगवान ने ऐसा फरमाया है अथवा भगवान ने जैसा फरमाया है वैसा ही मैं कह रहा हूँ। किन्तु इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर

की निर्वाण रात्रि के अवसान में ही सकल चराचर के पूर्ण केवली बन चुके थे। ऐसी स्थिति में वे ये नहीं कह सकते थे कि भगवान महावीर ने ऐसा कहा है, वही मैं कहता हूँ। केवली होने के कारण वे तो यही कहते – मैं ऐसा देखता हूँ, मैं ऐसा कहता हूँ।

ऐसी स्थिति में तीर्थंकर भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित श्रुत परपंरा को अविच्छिन्न रूप यथावत् रखने की दृष्टि से इन्द्रभूति गौतम को भगवान महावीर का उत्तराधिकारी न बनाया जाकर आर्य सुधर्मा को ही प्रथम पट्टधर नियुक्त किया गया।

उपलब्ध एकादशांगी आर्य सुधर्मा की वाचना

आज जो एकादशांगी उपलब्ध है, वह आर्य सुधर्मा की वाचना है। इस तथ्य की पुष्टि करने वाले अनेक प्रमाण आगमों में उपलब्ध हैं, उनमें से कतिपय प्रमाण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं:-

आचारांग सूत्र के उद्घोषात्मक प्रथम वाक्य में – ''सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं।'' अर्थात् हे आयुष्मान जम्बू मैंने सुना है, उन भगवान महावीर ने इस प्रकार

कहा है। इस वाक्य रचना से वह बिल्कुल स्पष्ट है कि इस वाक्य का उच्चारण करने वाला गुरू अपने शिष्य से वही कह रहा है जो स्वयं उसने भगवान महावीर के मुखारविन्द से सुना था।

आचारांग सूत्र की ही तरह समवायांग, स्थानांग, व्याख्या-प्रज्ञप्ति आदि अंग सूत्रों में तथा उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि अंगबाह्य श्रुतों में भी आर्य सुधर्मा द्वारा विवेच्य विषय का निरूपण - ''सुयं में आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं!'' इसी प्रकार की शब्दावली से किया गया है।

अनुत्तरोपपातिक सूत्र, ज्ञाताधर्म कथा आदि के आरंभ में और भी स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है -

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, अज्ज सुहम्मस्स समोसरणं .... परिसा पडिगया।

जम्बू जाव पज्जुवासई एवं वयासी जइणं भंते। समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स णं भंते। अंगस्स अणुत्तरोववाइय समणेणं जाव संपत्तेणं

के अट्ठे पण्णत्ते।

तएणं से सुहम्मे अणगारे जम्बू अणगारं एवं वयासी – एवं खलु जम्बू। समणेणं जाव संपत्तेणं नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाईय दसाणं तिण्णि वग्गा पण्णत्ता।

आर्य जम्बू ने अपने गुरू आर्य सुधर्मा से समय–समय पर अनेक प्रश्न प्रस्तुत करते हुए पूछा – भगवन्! श्रमण भगवान महावीर ने अमुक अंग का क्या अर्थ बताया है।

अपने शिष्य जम्बू के प्रश्न के उत्तर में उन अंगों का अर्थ बताते हुए आर्य सुधर्मा कहते हैं – आयुष्यमान् जम्बू! अमुक अंग का जो अर्थ भगवान महावीर ने फरमाया वह मैंने स्वयं ने सुना है। उन प्रभु ने अमुक अंग का अमुक अध्ययन का, अमुक वर्ग का यह अर्थ फरमाया है।

अपने शिष्य जम्बू को आगमों का ज्ञान कराने की ऊपरवर्णित परिपाटी अन्य अनेक सूत्रों मे भी परिलक्षित होती है।

नायाधम्मकहाओ के प्रारंभिक पाठ से भी यह

प्रमाणित होता है कि वर्तमान काल में उपलब्ध अंग शास्त्र आर्य सुधर्मा द्वारा गुंफित किये गये हैं।

ऊपर लिखित प्रमाणों से यह निर्विवाद रूपेण सिद्ध हो जाता है कि अन्य गणधरों के समान आर्य सुधर्मा ने भी भगवान महावीर की देशना के आधार पर द्वादशांगी की रचना की। अन्य दश गणधर आर्य सुधर्मा के निर्वाण से पूर्व ही अपने-अपने गण उन्हें संभलाकर निर्वाण प्राप्त कर चुके थे। अत: आर्य सुधर्मा द्वारा ग्रथित द्वादशांगी ही प्रचलित रही और वर्तमान में जो एकादशांगी प्रचलित है वह आर्य सुधर्मा द्वारा ग्रथित है शेष गणधरों द्वारा ग्रथित द्वादशांगी वीर निर्वाण के कुछ ही वर्षों पश्चात् विलुप्त हो गई।

द्वादशांगी का परिचय

समवायांग और नन्दी सूत्र में द्वादशांगी का परिचय दिया गया है। श्वेताम्बर और दिगम्बर - दोनों परंपराओं के प्राचीन ग्रन्थों में द्वादशांगी का क्रम निम्नलिखित रूप में दिया गया है:-

1. आचारांग 2. सूत्रकृतांग 3. स्थानांग 4. समवायांग 5. व्याख्याप्रज्ञप्ति 6. ज्ञाताधर्मकथा 7. उपासकदशा 8. अंतगडदशा 9. अनुत्तरोपपातिकदशा 10. प्रश्नव्याकरण 11. विपाकसूत्र और 12. दृष्टिवाद।

1. आचारांग

आचारांग में श्रमण निर्ग्रंथों के आचार, गोचरी, विनय, कर्मक्षयादि विनय के फल, कायोत्सर्ग, उठना-बैठना, सोना, चलना, घूमना, भोजन-पान उपकरण की मर्यादा एवं गवेषणा आदि, स्वाध्याय, प्रतिलेखन आदि, पांच समिति, तीन गुप्ति का पालन, दोषों को टालकर शय्या, वसति, पात्र, उपकरण, वस्त्र, अशन पानादि ग्रहण करना, महाव्रतों, विविध व्रतों, तपों, अभिग्रहों, अंगोपांगों के अध्ययन काल में आचाम्ल आदि तप, ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार एवं वीर्याचार - इन सब बातों का सम्यक् रूपेण विचार किया गया है।

अंगों के क्रम की अपेक्षा से आचारांग का प्रथम स्थान

है। अत: यह प्रथम अंग माना गया है। श्रुत-पुरूष का प्रमुख आचार होने के कारण भी इसे प्रथम अंग कहा गया है।

आचारांग में दो श्रुतस्कंध, 25 अध्ययन, 85 उद्देशनकाल एवं 85 ही समुद्देशनकाल कहे गये हैं। इस प्रथम अंग में 18000 पद माने गये हैं। 25 अध्ययनात्मक आचारांग के जो 85 उद्देशन और 85 समुद्देशन काल माने गये हैं उसका कारण यह है कि दोनों श्रुतस्कन्धों के कुल मिला कर 85 उद्देशक होते हैं।

आचारांग में गद्य और पद्य इन दोनों ही शैलियों में प्रतिपाद्य विषय का प्रतिपादन होने के कारण यह गद्य-पद्यात्मक अंगशास्त्र है। वर्तमान में दोनों श्रुतस्कन्ध रूप आचारांग का पद-परिमाण 2500 श्लोक प्रमाण है।

आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध का नाम नवब्रह्मचर्य है और इसमें निम्नलिखित 9 अध्ययन हैं:-

1. शस्त्रपरिज्ञा 2. लोकविजय 3. शीतोष्णीय 4. सम्यक्त्व 5. लोकसार 6. धूत 7. महापरिज्ञा 8. विमोक्ष और 9. उपधानश्रुत।

9 अध्ययनात्मक प्रथम श्रुतस्कन्ध में पाँच प्रकार के आचार – ज्ञान आचार, दर्शन आचार, चारित्र आचार, तप आचार, और वीर्य आचार का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध में 9 अध्ययन और नवों अध्ययनों के कुल 51 उद्देशक हैं। महापरिज्ञा अध्ययन और उसके सातों उद्देशकों के विलुप्त हो जाने के कारण वर्तमान में प्रथम श्रुतस्कन्ध के 8 अध्ययन और 44 उद्देशक ही उपलब्ध हैं।

आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध में दार्शनिक एवं तात्त्विक विषय का प्रतिपादन किया गया है, अत: उसमें सूत्र शैली अपनाई गई है और द्वितिय श्रुतस्कन्ध में साधु के आचार के प्रत्येक पहलू को व्याख्यात्मक ढंग से समझाना आवश्यक था इसलिये यहां सरल और सुगम व्याख्या शैली को अपनाया गया है।

आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुत स्कन्ध के महापरिज्ञा नामक 7वें अध्ययन के लुप्त हो जाने के कारण वर्तमान में

संपूर्ण आचारांग के दो श्रुतस्कन्ध, 24 अध्ययन और 78 उद्देशक ही उपलब्ध हैं।

विश्वबन्धुत्व की भावनाओं से ओतप्रोत सच्चे और आदर्श मानवीय सिद्धांतों का इसमें सजीव वर्णन होने के कारण आचारांग का केवल द्वादशांगी ही नहीं, अपितु संसार के समग्र धर्मशास्त्रों में एक बड़ा उच्च एवं महत्वपूर्ण स्थान है।

आचारांग के दोनों श्रुतस्कन्ध गणधर ग्रथित हैं या नहीं? उसकी पदसंख्या 18000 बताई गई है वह मात्र प्रथम श्रुतस्कन्ध की तथा निशीथ आदि चुलिकाएँ दूसरे श्रुतस्कन्ध की हैं या नहीं? इसके सम्बन्ध में निष्कर्ष इस प्रकार है :-

1. आचारांग के दोनों श्रुतस्कन्ध द्वादशांगी के रचनाकाल में गणधरों द्वारा सर्वप्रथम ग्रथित किये गये थे। आगम में जो आचारांग की पद संख्या 18000 उल्लिखित है, वह वस्तुत: दोनों श्रुतस्कन्धों सहित संपूर्ण आचारांग की है, न कि केवल प्रथम श्रुतस्कन्ध की।

2. द्वितिय श्रुतस्कन्ध के पंचचूलात्मक एवं आगमों के रचनाकाल से पश्चात्वर्ती काल में स्थविरकृत आचारांग मात्र होने तथा प्रथम श्रुतस्कन्ध को ही मूल आचारांग मानते हुए केवल उसी की पद संख्या 18000 होने की जो मान्यता निर्युक्तिकार आदि द्वारा अभिव्यक्त की गई है वह आगमिक एवं अन्य किसी आधार पर आधारित न होने के कारण निराधार, काल्पनिक एवं अमान्य है।

3. वर्तमान काल में आचारांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के स्वरूप के सम्बन्ध में जो यह मान्यता प्राय: सर्वत्र प्रचलित है कि सम्पूर्ण द्वितीय श्रुतस्कन्ध चार चूलाओं में विभक्त है, यह मान्यता किसी शास्त्र द्वारा सम्मत न होने के कारण शास्त्रीय मान्यता की कोटि में नहीं आती। आचारांग की एक भी चूला न तो कभी थी और न है। आगमों के रचनाकाल से लेकर निशीथ के छेदसूत्र के रूप में प्रतिष्ठापित किये जाने तक नवम पूर्व की तृतीय वस्तु का आचार नामक बीसवाँ प्राभृत संभवत: आचारांग की चूलिका के रूप में माना जाता रहा और कालान्तर में उस प्राभृत की निशीथ छेदसूत्र के रूप में प्रतिष्ठापना के पश्चात् निशीथ को

आचारांग की चूलिका माना जाने लगा। इतना होने पर भी न कभी आचार प्राभृत की पद संख्या आचारांग की पद संख्या के सम्मिलित मानी गई थी और न निशीथ की ही।

आचारांग का स्थान एवं महत्व

आचार जीवन को समुन्नत बनाने का साधन, साधना का मूलाधार और मोक्ष का सोपान है अत: आचारांग का जैन वाङ्मय में बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है।

आचारांग में मोक्ष प्राप्ति के बाधक असत् का एवं मोक्ष प्राप्ति में परम सहायक सत् का ज्ञान कराते हुए समस्त हेय के परित्याग का और उपादेय के आचरण का उपदेश दिया गया है। इस दृष्टि से आचारांग के सर्वाधिक महत्वपूर्ण होने के कारण ही समवायांग और नन्दी सूत्र में द्वादशांगी का परिचय देते हुए इसे द्वादशांगी क्रम में सर्वप्रथम स्थान पर रखा गया है।

आचारांग को अंगों के क्रम में प्रथम स्थान देने का कारण बताते हुए निर्युक्तिकार ने लिखा है कि आचारांग में मोक्ष के उपायों का प्रतिपादन किया गया है और यही प्रवचन

सार है इसलिये इसको द्वादशांगी के क्रम में प्रथम स्थान दिया गया है।

अनन्त अतीत में जितने भी तीर्थंकर हुए हैं उन सबने सर्वप्रथम आचारांग का ही उपदेश दिया, वर्तमान काल के तीर्थंकर जो महाविदेह क्षेत्र में विराजमान हैं, वे भी सर्वप्रथम आचारांग का ही उपदेश देते हैं और अनागत अनन्त काल में जितने भी तीर्थंकर होने वाले हैं वे भी सर्वप्रथम आचारांग का ही उपदेश देंगे, तदनन्तर शेष 11 अंगों का। गणधर भी इसी परिपाटी का अनुसरण करते हुए इसी अनुक्रम से द्वादशांगी को ग्रथित करते हैं। इससे आचारांग की सर्वाधिक महत्ता प्रकट होती है।

आचारांग सूत्र के विशिष्ट ज्ञाता मुनि को ही उपाध्याय और आचार्य पद के योग्य माना जाये, इस प्रकार के अनेक उल्लेख आगम साहित्य में उपलब्ध होते हैं। आचारांग का सर्वप्रथम अध्ययन करना साधु-साध्वियों के लिए अनिवार्य करने के साथ-साथ इस प्रकार का भी विधान किया गया था कि यदि कोई साधु अथवा साध्वी, आचारांग का सम्यक् रूपेण

अध्ययन करने से पूर्व ही अन्य आगमों का अध्ययन – अनुशीलन करता है तो वह लघु चातुर्मास प्रायश्चित का अधिकारी बन जाता है। इतना ही नहीं, आचारांग का अध्ययन एवं ज्ञान प्राप्त नहीं करने वाले साधु को किसी भी प्रकार का पद नहीं दिया जाता था। इन तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि द्वादशांगी में आचारांग का कितना महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है।

2. सूत्रकृतांग

द्वादशांगी के क्रम में सूत्रकृतांग का दूसरा स्थान है। समवायांग में आचारांग के पश्चात् सूत्रकृतांग का परिचय देते हुए कहा गया है इसमें स्वमत, परमत, जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष आदि तत्वों का निरूपण एवं नवदीक्षितों के लिये हितकर उपदेश है। इसमें एक सौ अस्सी क्रियावादी मतों, चौरासी अक्रियावादी मतों, सड़सठ अज्ञानवादी मतों एवं बत्तीस विनयवादी मतों – इस प्रकार कुल मिलाकर 363 अन्य मतों पर चर्चा की गई है। इन सबकी समीक्षा के पश्चात् यह बताया गया है कि अहिंसा ही धर्म का

मूलस्वरूप और श्रेष्ठतत्व है।

सूत्रकृतांग के दो श्रुतस्कन्ध हैं। इसके प्रथम श्रुतस्कन्ध में 16 और दूसरे श्रुतस्कन्ध में 7 इस तरह कुल 23 अध्ययन, 33 उद्देशनकाल, 33 समुद्देशनकाल तथा 36000 पद हैं।

23 अध्ययन के पश्चात् इन्द्रभूति गौतम के साथ पार्श्वपत्य पटलिपुत्र संवाद और गौतम से प्रतिबोध पाकर पेढ़ाल पुत्र द्वारा भगवान महावीर के पास चातुर्याम धर्म का परित्याग कर पंच महाव्रत धर्म स्वीकार करने का उल्लेख है।

सूत्रकृतांग वस्तुत: प्रत्येक साधक के लिये दार्शनिक ज्ञान की प्राप्ति में बड़ा पथप्रदर्शक है। मुनियों के लिये इसका अध्ययन, चिन्तन, मनन और निदिध्यासन परमावश्यक है। इसमें उच्च आध्यात्मिक सिद्धान्तों को जीवन में ढालने, सभी प्रकार के अन्य मतों का परित्याग करने, विनय को प्रधान भूषण मानकर आदर्श श्रमणाचार का पालन करने आदि की बड़ी प्रभावपूर्ण ढंग से प्रेरणाएं दी गई हैं। दार्शनिक दृष्टि से यह आगम उस समय की चिन्तन प्रणाली का बड़ा ही मनोहारी दिग्दर्शन

प्रस्तुत करता है। सूत्रकृतांग में आध्यात्मिक विषयों पर दिये गये सुन्दर एवं सोदाहरण विवेचनों से भारतीय जीवन, दर्शन और अध्यात्मतत्त्व का भली भाँति बोध हो जाता है।

3. स्थानांग

द्वादशांगी में स्थानांग का तीसरा स्थान है। उसमें स्वसमय, परसमय, स्वपर-उभय समय, जीव-अजीव, लोक-अलोक की स्थापना की गई है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध, दश अध्ययन, 21 उद्देशन काल, 21 समुद्देशन काल, 72000 पद हैं। वर्तमान में उपलब्ध इस सूत्र का पाठ 3770 श्लोक परिमाण है।

प्रस्तुत सूत्र में भगवान महावीर के निर्वाण पश्चात् दूसरी से छठी शताब्दी तक के अवान्तर काल की कुछ घटनाओं का उल्लेख किया गया है। उसे देखकर यह मान्यता बना लेना कि स्थानांग सूत्र की रचना गणधर ने नहीं, अपितु किसी पश्चाद्वर्ती आचार्य ने की है - न्यायोचित नहीं है। इस पर दो बातें विचारणीय हैं। प्रथम तो यह कि अतिशय ज्ञानी सूत्रकार

ने कतिपय भावी घटनाओं की पूर्व सूचना बहुत पहले ही दे दी हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। जैसे स्थानांग के नवम स्थान में आगामी उत्सर्पिणी काल के भावी तीर्थंकर महापद्म का चरित्र चित्रण किया गया है। दूसरी विचारणीय बात यह है कि श्रुति-परंपरा से चले आने वाला आगम पाठ स्कंदिलाचार्य और देवर्द्धिगणी द्वारा आगम वाचना में स्थित किया गया। संभव है उस स्थिरीकरण के समय मूल भावों को यथावत् सुरक्षित रखते हुए भी उसमें प्रसंगोचित समझकर कुछ आवश्यक पाठ बढ़ाया गया हो।

स्थानांग में 1 से 10 स्थानों का क्रमशः विवरण दिया गया है। विषय की गम्भीरता एवं नयज्ञान की दृष्टि से स्थानांग सूत्र की बहुत बड़ी महत्ता मानी गई है। इसमें जो कोश-शैली अपनाई गई है वह बड़ी ही उपयोगी और विचारपूर्ण है। इसके गम्भीर भावों को समझने वाला श्रुतस्थविर माना गया है।

4. समवायांग

द्वादशांगी के क्रम में समवायांग का चौथा स्थान है।

इसमें एक श्रुतस्कन्ध, एक अध्ययन, एक उद्देशनकाल, एक ही समुद्देशनकाल और 1,44,000 पद हैं। वर्तमान में उपलब्ध पाठ 1667 श्लोक-परिमाण है। इसमें संख्या क्रम से संग्रह की प्रणाली के माध्यम से पृथ्वी, आकाश और पाताल इन तीनों लोकों के जीवादि समस्त तत्वों को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से संख्या एक से लेकर कोटानुकोटि संख्या तक बड़ा महत्वपूर्ण परिचय दिया गया है। इनमें आध्यात्मिक तत्वों, तीर्थंकरों, गणधरों, चक्रवर्तियों और वासुदेवों से सम्बन्धित उल्लेखों के साथ-साथ भूगर्भ, भूगोल, खगोल - सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र एवं तारों आदि के सम्बन्ध में बड़ी ही उपयोगी सामग्री प्रस्तुत की गई है।

समवायांग में द्रव्य की अपेक्षा जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश आदि, क्षेत्र की अपेक्षा से देवों, मनुष्यों, तिर्यंचों और नारक आदि जीवों की स्थिति, काल की अपेक्षा पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, पुद्गल परावर्तन आदि का तथा भाव की अपेक्षा से ज्ञान, दर्शन, वीर्य आदि जीव-भाव और वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, गुरू-लघु आदि

अजीव भाव का वर्णन किया गया है।

एक समवाय से लेकर कोटाकोटि समवाय के पश्चात् 12 सूत्रों में द्वादशांगी का 'गणिपिटक' के नाम से सारभूत परिचय दिया गया है।

तदनन्तर समवसरण का वर्णन तथा जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र की अतीत उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी के कुलकरों तथा वर्तमान अवसर्पिणी के कुलकरों तथा उनकी भार्याओं का वर्णन करने के पश्चात् वर्तमान अवसर्पिणी के 24 तीर्थंकरों के सम्बन्ध में बड़ा ही महत्वपूर्ण विवरण दिया गया है।

चक्रवर्तियों, बलदेवों और वासुदेवों के सम्बन्ध में आवश्यक परिचय और प्रतिवासुदेवों के नाम दिये गये हैं। समवायांग में प्रतिवासुदेवों की महापुरूषों में गणना नहीं की गई है।

तदनन्तर सर्वप्रथम जम्बूदीप के ऐरावत क्षेत्र में हुए इस अवसर्पिणी के 24 तीर्थंकरों, भरतक्षेत्र की आगामी उत्सर्पिणी के सात कुलकरों, ऐरावत क्षेत्र की भावी उत्सर्पिणी

के 10 कुलकरों और भरतक्षेत्र तथा ऐरावत क्षेत्र के आगामी उत्सर्पिणीकाल के 24 तीर्थंकरों, बलदेवों एवं वासुदेवों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी तथा प्रतिवासुदेवों के नाम दिये गये हैं।

समवायांग की प्रत्येक समवाय, प्रत्येक सूत्र प्रत्येक विषय के जिज्ञासुओं एवं शोधार्थियों के लिये ज्ञातव्य महत्वपूर्ण तथ्यों का महान भंडार है। समवायांग के अन्तिम भाग को एक प्रकार से संक्षिप्त जैन पुराण की संज्ञा दी जा सकती है। वस्तुतः वस्तुविज्ञान, जैन सिद्धांत और जैन इतिहास की दृष्टि से समवायांग एक आत्यंतिक महत्व का श्रुतांग है।

5. व्याख्याप्रज्ञप्ति

पाँचवाँ अंग व्याख्या-प्रज्ञप्ति है। इसे भगवती सूत्र के नाम से भी पहिचाना जाता है। इसमें जीव, अजीव, जीवाजीव, स्वसमय, परसमय, स्वपर समय, लोक-अलोक, और लोकालोक विषयक विस्तृत व्याख्या - चर्चा की गई है। प्रस्तुत आगम में 1 श्रुतस्कन्ध, 111 अध्ययन, 10,000

उद्देशनकाल, 10000 समुद्देशनकाल, 36000 प्रश्न एवं उनके उत्तर तथा 2,88,000 पद हैं। इसमें जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्ररूपित भावों का वर्णन, प्ररूपण, निदर्शन और उपेदश दिया गया है।

व्याख्या-प्रज्ञप्ति में अध्ययन शतक के नाम से प्रसिद्ध हैं। वर्तमान में इसके 41 शतक और उनमें से 8 शतक 105 अवान्तर शतकात्मक हैं। इस प्रकार शतक और अवान्तर शतक इन दोनों की सम्मिलित संख्या (41-8) + 105=138 और उद्देशकों की संख्या 1883 है। व्याख्या प्रज्ञप्ति अन्य सब अंगों की अपेक्षा अतिविशाल अंग है। वर्तमान पदपरिणाम 15,751 श्लोक प्रमाण है। व्याख्या-प्रज्ञप्ति के वियाहपण्णत्ति, विवाह पण्णत्ति और विबाह पण्णत्ति ये तीन नाम भी उपलब्ध होते हैं।

व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक इस पंचम अंग की शैली प्रश्नोत्तर के रूप में है। इन्द्रभूति गौतम ने भगवान महावीर से प्रश्न किये और उन प्रश्नों का भगवान द्वारा उत्तर दिया गया है। इसी प्रश्नोत्तर के रूप में यह सुविशाल आगम आज विद्यमान है। वृत्तिकार अभयदेवसूरि ने इन प्रश्नोत्तरों की संख्या 36000

बताई है। उनमें से अनेक प्रश्न और उनके उत्तर छोटे-छोटे हैं। अनेक प्रश्नोत्तर बहुत बड़े-बड़े हैं। उदाहरण स्वरूप मंखलिपुत्र गोशालक के सम्बन्ध में जो प्रश्न किया गया है, उसके उत्तर में पूरा का पूरा 15वाँ शतक आ गया है।

व्याख्या-प्रज्ञप्ति में भगवान महावीर के जीवन का, उनके शिष्यों, भक्तों, गृहस्थ अनुयायियों, अन्य तीर्थियों एवं उनकी मान्यताओं का विस्तृत परिचय दिया गया है। गोशालक के सम्बन्ध में जितना विस्तृत परिचय इस अंग में मिलता है। उतना अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

इसके अतिरिक्त कुणिक और महाराजा चेटक के बीच हुए महाशिलाकण्टक एवं रथमूषल संग्राम नामक दो महायुद्धों का व्याख्या-प्रज्ञप्ति में मार्मिक वर्णन किया गया है। इसमें बताया गया है कि उन दोनों महायुद्धों में क्रमशः 84 लाख और 96 लाख योद्धा दोनों पक्षों के मारे गये।

व्याख्या-प्रज्ञप्ति के 21वें और 23वें शतकों में जो वनस्पतियों का वर्गीकरण किया गया है वह अनुपम है। इस

प्रकार व्याख्या प्रज्ञप्ति में 36000 प्रश्नोत्तरों के रूप में विविध विषयों का अथाह ज्ञान संकलित कर लिया गया है, जो जैन सिद्धांत, इतिहास, भूगोल, राजनीति आदि अनेक दृष्टियों से बड़ा ही महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ आध्यात्मिक तत्त्व की कुंजी की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। तत्कालीन धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों पर व्याख्या प्रज्ञप्ति में दिये गये अनेक विवरण समीचीन रूप से प्रकाश डालते हैं।

6. ज्ञाताधर्मकथा

नायाधम्मकहाओ का संस्कृत नाम ज्ञाताधर्मकथा है। द्वादशांगी के क्रम में इसका छठा स्थान है। इसमें उदाहरण प्रधान धर्मकथाएँ दी हुई हैं, जिनमें मेघकुमार आदि के नगरों, उद्यानों, चैत्यों, वनखण्डों, राजाओं, माता-पिता, समवसरणों, धर्माचार्यों, धर्मकथाओं, ऐहिक एवं पारलौकिक ऋद्धियों, भोग, परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुतपरिग्रह, उत्कृष्ट तपस्याओं, पर्याय संलेखनाओं, भक्तप्रत्याख्यानों, पादोपगमनों, स्वर्गगमन,

उत्तमकुल में जन्म बोधिलाभ, अन्त:क्रिया आदि विषयों का वर्णन तथा भगवान महावीर के विनयमूलक श्रेष्ठ शासन में प्रव्रजित उन साधकों का वर्णन है जो ग्रहण किये हुए व्रतों के परिपालन में दुर्बल, शिथिल, हतोत्साहित, विषयसुखमूर्छित, संयम के मूलगुणों एवं उत्तरगुणों की विराधना करने वाले बन गये। इस छठे अंग में उन धीरवीर साधकों का भी वर्णन है जो घोरातिघोर परीषहों के उपस्थित होने पर भी संयम मार्ग से किंचित्मात्र भी विचलित नहीं हुए।

इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध में 19 अध्ययन और द्वितिय श्रुतस्कन्ध के दश वर्ग हैं। दोनों श्रुतस्कन्धों के 29 उद्देशनकाल, 29 समुद्देशनकाल 5,76,000 पद हैं। इसका वर्तमान में उपलब्ध पदपरिमाण 5500 श्लोक प्रमाण है।

इस अंग में उल्लिखित धर्मकथाओं में पार्श्वनाथकालीन जनजीवन, विभिन्न भवभवान्तर, प्रचलित रीतिरस्म, नौका सम्बन्धी साधन सामग्री, कारागार पद्धति, राज्य व्यवस्था,

सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ आदि का बड़ा सजीव वर्णन किया गया है।

7. उपासकदशा

उवासगदसाओ नामक 7वें अंग में नाम के अनुसार दश उपासक गृहस्थों का वर्णन किया गया है। उनके अध्ययन भी दश हैं अत: शास्त्र का नाम उपासकदशा युक्तिसंगत है।

इसमें 1 श्रुतस्कन्ध, 10 अध्ययन, 10 उद्देशनकाल और 10 ही समुद्देशनकाल कहे गये हैं। इसमें संख्यात हजार पद हैं। वर्तमान में इस आगम का परिमाण 812 श्लोक प्रमाण है।

इसके 10 अध्ययन में आनन्द आदि विभिन्न जाति व व्यवसाय वाले श्रावकों की जीवनचर्या का वर्णन किया गया है।

दश अध्ययन के दश श्रावकों के नाम क्रमश: इस प्रकार है:-

1. आनन्द गाथापति 2. कामदेव 3. चुलनीपिता 4. सुरादेव

5. चुल्लशतक 6. कुण्डकौलिक 7. कुम्भकार शकडालपुत्र 8. महाशतक 9. नन्दिनीपिता और 10. सालिहीपिता।

शास्त्र में वर्णित ये सभी उपासक बारह व्रतधारी श्रावक थे। महाशतक के अलावा सबके एक-एक पत्नी थी। सबने 14 वर्ष तक उपासक धर्म की पालना कर 15वें वर्ष में श्रमण धर्म के निकट पहुँचने की भावना से अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्रों को गृहस्थी संभलाकर श्रावक के वेश में शनैः शनैः आरम्भ-परिग्रह का त्याग कर अन्त में श्रमणभूत प्रतिमा में साधु की तरह त्रिकरण-त्रियोग से पाप निवृत्ति की साधना की।

आनन्द की साधना उपसर्गरहित रही, पर अन्य उपासकों - कामदेव से शकडालपुत्र तक को देवकृत उपसर्ग और महाशतक को स्त्री का उपसर्ग होना बताया गया है। सबने 20 वर्ष की अवधि तक श्रावक धर्म का पालन कर सद्गति प्राप्त की और आगामी भव में महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर वे सब मोक्ष के अधिकारी बनेंगे।

सद्गृहस्थों – श्रावक श्राविकाओं के गृहस्थ धर्म पर समीचीनतया पूर्णरूपेण प्रकाश डालने वाला यह सातवाँ अंग उपासकदशा वस्तुत: सभी गृहस्थों के लिये बड़ा ही उपयोगी है। इसमें जिस प्रकार के सदाचार का दिग्दर्शन कराया गया है, उसके अनुसार यदि प्रत्येक गृहस्थ अपने जीवन को ढालने का प्रयास करें तो यह मानवता के लिये वरदान सिद्ध हो सकता है।

8. अंतगडदशा

आठवाँ अंग अन्तकृतदशा है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध, 8 वर्ग, 90 अध्ययन, 8 उद्देशनकाल और 8 ही समुद्देशनकाल तथा परिमित वाचनाएँ हैं। इसमें पद संख्यात हजार हैं। वर्तमान में यह अंगशास्त्र 1900 श्लोक परिमाण का है। इसमें आठों वर्ग क्रमश: 10, 8, 13, 10, 10, 26, 13, और 10 अध्ययनों में विभक्त है। प्रस्तुत सूत्र में भवभ्रमण का अन्त करनेवाले साधकों की साधना दशा का वर्णन होने के कारण इसका नाम अन्तकृतदशा रखा गया है।

अंतकृतदशा के प्रथम दो वर्गों में गौतम आदि वृष्णि कुल के 18 राजकुमारों की साधना का वर्णन है। तीसरे वर्ग के 13 और चौथे वर्ग के 10 अध्ययनों में वर्णित 23 चारित्रात्मा भी श्री वसुदेव, श्री कृष्ण, श्री बलदेव और श्रीसमुद्रविजय के राजकुमार बताये गये हैं। पंचम वर्ग में बताया गया है कि राजकुमार की तरह राजरानियाँ भी संयम साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त कर सकती हैं। श्री कृष्ण की पद्मावती आदि रानियों और पुत्रवधुओं ने भी 20-20 वर्ष के दीक्षाकाल में 11 अंगों का ज्ञान प्राप्त कर दीर्घकालीन कठोर तपश्चर्या द्वारा सकल दुःखों का अन्तकर शाश्वत शिवपद प्राप्त किया। छठे वर्ग में भगवान महावीर के शासनवर्ती विभिन्न श्रेणी के 16 साधकों का वर्णन है। सातवें और आठवें वर्ग के 23 अध्ययनों में नन्दा, नन्दवती एवं काली, सुकाली आदि श्रेणिक की 23 रानियों के साधनामय जीवन का वर्णन है।

अन्तकृतदशा सूत्र की यह विशेषता है कि इसमें तद्भवमोक्षगामी जीवों का ही वर्णन किया गया है। यह

भौतिकता पर आध्यात्मिकता की विजय थी कि राजघराने के नरनारी विपुल ऐश्वर्य एवं अपरिमित भोगों को त्यागकर बड़ी संख्या में त्याग की ओर अग्रसर हुए।

9. अनुत्तरोपपातिक दशा

द्वादशांगी के क्रम में अनुत्तरोपपातिकदशा नौवा अंग है। इसमें 1 श्रुतस्कन्ध, 3 वर्ग, 3 उद्देशनकाल, 3 समुद्देशनकाल, परिमित वाचनाएँ और संख्यात हजार पद हैं। वर्तमान में यह सूत्र 192 श्लोक परिमाण का है।

इस अंग में ऐसे महापुरूषों का चरित्र दिया गया है जिन्होंने घोर तपश्चरण और विशुद्ध संयम की साधना के पश्चात् मरण प्राप्तकर अनुत्तर विमानों में देवत्व प्राप्त किया और वहाँ से च्यवनकर मनुष्य भव में संयमधर्म की सम्यग् आराधना कर मुक्ति प्राप्त करेंगे।

अनुत्तरोपपातिक दशा के तीन वर्गों में क्रमश: 10, 13 और 10 इस प्रकार कुल मिलाकर 33 अध्ययनों में 33

चारित्रात्माओं का संक्षिप्त वर्णन है। उन 33 महापुरूषों में प्रथम जालीकुमार आदि 23 मगध सम्राट श्रेणिक के पुत्र हैं।

10. प्रश्नव्याकरण

दशवाँ अंग प्रश्नव्याकरण है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में 108 प्रश्न, 108 अप्रश्न और 108 प्रश्नाप्रश्न, विद्यातिशय, नागकुमार, सुपर्णकुमार अथवा यक्षादि के साथ साधकों के जो दिव्य संवाद हुआ करते हैं, उन सब विषयों का निरूपण किया गया है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र में 1 श्रुतस्कन्ध, 45 उद्देशनकाल, 45 समुद्देशनकाल संख्यात सहस्रपद, परिमित वाचनाएँ और संख्यात् श्लोक हैं।

आज जो प्रश्नव्याकरण उपलब्ध है वह दो खण्डों में विभाजित है। इसके प्रथम खण्ड में 5 आस्रव द्वारों का वर्णन है और दूसरे खण्ड में 5 संवरद्वारों का। 5 आस्रवद्वारों में हिंसादि 5 पापों और संवरद्वारों में हिंसादि पापों के निषेध रूप अहिंसादि

5 व्रतों का सुव्यवस्थित विवरण दिया गया है।

हिंसा, मृषा, अदत्तादान, कुशील और परिग्रह – इन पाँच आस्रवद्वारों तथा अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच संवर द्वारों का सर्वांगपूर्ण बोध प्राप्त करने के लिये प्रश्नव्याकरण के इन दोनों श्रुतस्कन्धों का पठन–पाठन एवं मनन बड़ा ही उपयोगी है। विचारकों के लिए तो प्रश्नव्याकरण वस्तुत: एक महान निधि के समान है।

11. विपाक सूत्र

विपाक सूत्र ग्यारहवाँ अंग है। इसमें दो श्रुतस्कन्ध, 20 अध्ययन, 20 उद्देशनकाल, 20 समुद्देशनकाल, संख्यात पद, परिमित वाचनाएँ और संख्यात श्लोक हैं। वर्तमान में इसका स्वरूप 1216 श्लोक परिमाण है। विपाकसूत्र का मुख्य लक्ष्य कर्म के शुभाशुभ फल विपाक को समझाना है।

विपाक सूत्र के – दु:ख विपाक और सुखविपाक ये दो विभाग हैं। कर्म सिद्धांत वस्तुत: जैन धर्म का एक प्रमुख

और महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। कर्म सिद्धांत के उदाहरणों के लिये यह आगम अत्यन्त उपयोगी है।

इसके पहले भाग – दुःख विपाक में ऐसे 10 व्यक्तियों का वर्णन है, जिन्हें अशुभ कर्मानुसार अनेक कष्ट सहन करने पड़े और जो कष्ट से मुक्ति प्राप्त कर सके।

दूसरे श्रुतस्कन्ध में सुबाहु–भद्रनन्दि आदि 10 राजकुमारों के सुखमय जीवन का वर्णन है। इन सबने पूर्वभव में तपस्वी मुनि को पवित्र भाव से निर्दोष आहार का प्रतिलाभ देकर संसार का अन्त किया और उत्तमकुल में जन्म लेकर सुखपूर्वक साधना से मुक्ति प्राप्त की।

12. दृष्टिवाद

यह प्रवचन पुरूष का बारहवाँ अंग है। जिसमें संसार के समस्त दर्शनों और नयों का निरूपण किया गया है अथवा जिसमें सम्यक्त्व आदि दृष्टियों अर्थात् दर्शनों का विवेचन किया गया है।

दृष्टिवाद नामक यह बारहवाँ अंग विलुप्त हो चुका है। अत: यह कहीं उपलब्ध नहीं होता। वी. नि. सं. 170 में श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु के स्वर्गगमन के पश्चात् दृष्टिवाद का ह्रास प्रारंभ हुआ और वी. नि. सं. 1000 में यह पूर्णत: शब्द रूप में पूर्णत: और अर्थरूप में अधिकांशत: विलुप्त हो गया।

स्थानांग सूत्र में दृष्टिवाद के 10 नाम बताये गये हैं जो इस प्रकार हैं:-

1. दृष्टिवाद 2. हेतुवाद 3. भूतवाद 4. तथ्यवाद 5. सम्यक्वाद 6. धर्मवाद 7. भाषाविचय 8. पूर्वगत 9. अनुयोगगत और 10. सर्वप्राणभूतजीवसत्वसुखावह।

समवायांग और नन्दीसूत्र के अनुसार दृष्टिवाद के पाँच विभाग कहे गये हैं:- 1. परिक्रम 2. सूत्र 3. पूर्वगत 4. अनुयोग और 5. चूलिका।

दृष्टिवाद का तीसरा विभाग - पूर्वगत विभाग अन्य

सब विभागों से अधिक विशाल और बड़ा महत्वपूर्ण माना गया है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित 14 पूर्व थे:-

1. उत्पादपूर्व, 2. अग्रायणीय पूर्व, 3. वीर्य प्रवाद, 4. अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व, 5. ज्ञानप्रवाद पूर्व, 6. सत्यप्रवाद पूर्व, 7. आत्मप्रवाद पूर्व, 8. कर्मप्रवाद पूर्व, 9. प्रत्याख्यानप्रवाद पूर्व, 10. विद्यानुप्रवाद पूर्व ,11. अवन्ध्य पूर्व, 12. प्राणवाय पूर्व, 13. क्रियाविशाल पूर्व और 14. लोक बिन्दुसार पूर्व।

आचार्य शीलांक ने पूर्व साहित्य का परिमाण लिखते हुए कहा था कि समस्त नदियों के बालुकणों की गणना की जाए अथवा सभी समुद्रों के पानी को हथेली में एकत्रित कर उनके जलकणों की गणना की जाए तो उन बालुकणों तथा जलकणों की संख्या से अधिक अर्थ एक पूर्व का होगा। स्पष्ट है कि द्वादशांगी के बहुत बड़े भाग का विच्छेद हुआ है। फिर भी आर्य सुधर्मा द्वारा प्रभु की दिव्य ध्वनि के आधार पर ग्रथित एकादशांगी और पूर्व ज्ञान आज भी अंशत: विद्यमान है।

इतिहास पुरुष आचार्य हस्ती

युग मनीषी आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज भारतीय निर्ग्रन्थ श्रमण परम्परा के उज्ज्वल नक्षत्र थे। वि. सं. 1967 की पौष शुक्ला चतुर्दशी (13 जनवरी 1911) को राजस्थान के जोधपुर जिलान्तर्गत पीपाड़ सिटी में उनका जन्म हुआ। उनके जन्म के दो माह पूर्व ही उनके पिता श्री केवलचन्द बोहरा प्लेग की चपेट में आकर परलोक सिधार गये। उनकी माँ श्राविका रूपकँवर (रूपादेवी) पर यह अनभ्र वज्रपात था। इस घटना से रूपादेवी को संसार से विरक्ति हो गई। वैराग्यभाव के साथ ही उसने बालक हस्तीमल का पालन-पोषण किया और गहरे धर्मसंस्कार प्रदान किये। इस बीच कुछ ही वर्षों के अन्तराल में हस्ती के नाना तथा दादी का भी देहान्त हो गया। जन्मजात वैरागी बालक हस्ती के चित्त पर इन घटनाओं का गहरा असर हुआ और उनका वैराग्य दृढ़ से दृढ़तर बनता गया।

माघ शुक्ला द्वितीया वि.सं. 1977 (10 फरवरी 1921) को अजमेर (राज.) में महज 10 की बालवय में आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी महाराज से वैरागी हस्तीमल ने मुनि जीवन अंगीकार कर लिया। उनके साथ ही उनकी वीरमाता रूपादेवी तथा अन्य दो मुमुक्षुओं ने भी दीक्षा लेकर संयम की राह अपना ली। दीक्षा के उपरान्त ही उन्होंने जैनागम, प्राच्य भाषा, दर्शन और साहित्य का अध्ययन शुरू कर दिया। बचपन से ही विशिष्ट

योग्यता और प्रतिभा के धनी बालयोगी मुनि हस्तीमल का मात्र साढ़े पन्द्रह वर्ष की वय में ही संघ नायक के रूप में चयन कर लिया गया। थोड़े ही समय में उनका ज्ञान-ध्यान इतना अनुत्तर बन गया कि मात्र 19 वर्ष 3 माह और 19 दिन की तरुण वय में वि. सं. 1987 की वैशाख शुक्ला 3 अक्षय तृतीया को जोधपुर में उन्हें स्थानकवासी परम्परा के रत्नसंघ के सप्तम आचार्य के रूप में अभिषिक्त कर दिया गया। जैन इतिहास में कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के बाद संभवत: यह पहला अवसर था जब 20 वर्ष से कम उम्र के किसी मुनि को आचार्य पद पर आरूढ़ किया गया।

आचार्य हस्ती का व्यक्तित्व अखूट आध्यात्मिक ऊर्जा से भरा और कृतित्व बहुआयामी था। सामायिक साधना के द्वारा समभाव-प्राप्ति का सन्देश देने के साथ उन्होंने लाखों लोगों को स्वाध्याय से जोड़कर समाज में मैत्री और ज्ञान का नव आलोक प्रसारित कर दिया। व्यसनमुक्ति, कुरीति-उन्मूलन, नारी-शिक्षा जैसे अनेक कदम उन्हें महान समाज सुधारक के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। करुणा के सागर आचार्य हस्ती ने साँप जैसे विषैले प्राणी को भी अभय प्रदान किया। अहिंसा, क्षमा और समता को उन्होंने व्यवहार स्तर पर जिया और दुनिया को यह सन्देश दिया कि भगवान महावीर के अहिंसा आदि जीवन मूल्य सभी मौजूदा समस्याओं का समाधान करने में पूर्ण सक्षम है।

प्राचीन भाषा व लिपि के विशेषज्ञ आचार्य हस्ती का जीवन उनके जीवनकाल में ही इतिहास बन गया था। अथक श्रम और प्रचुर प्रामाणिक सन्दर्भो के साथ लगभग साढ़े तीन हजार पृष्ठों में लिखित और चार भागों विभक्त 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' जैन धर्म और भारतीय समाज के लिए उनका अमर अवदान है। इसके अतिरिक्त कई जैन आगम ग्रंथों का उन्होंने सम्पादन, अनुवाद और पद्यानुवाद किया। धर्म, संस्कृति और अध्यात्म की गहरी अनुभूतियों से अनुप्राणित काव्य उन्होंने रचे। वे एक कुशल और प्रभावी प्रवचनकार थे। उनके प्रेरक प्रवचनों का संकलन 'गजेन्द्र व्याख्यानमाला' शीर्षक से सात भागों में प्रकाशित हुआ।

राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु आदि क्षेत्रों में विचरण करते हुए आचार्य हस्ती ने कुल 70 चातुर्मास किये और 85 मुमुक्षुओं को श्रमण जीवन में दीक्षित किया। वि. सं. 2048 की वैशाख (प्रथम) शुक्ला अष्टमी (21 अप्रेल 1991) को रात्रि 8 बजकर 21 मिनट पर 13 दिवसीय तप-संथारे के साथ आचार्य हस्ती इस नश्वर देह को छोड़कर देवलोकगमन कर गये। जन्म और जीवन की तरह उनका महाप्रयाण भी एक इतिहास बन गया। सम्प्रति उनके सुयोग्य शिष्य आचार्य श्री हीराचन्द्रजी महाराज रत्नसंघ के अष्टम पट्टधर हैं।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
के विविध सेवा सोपान

- जिनवाणी हिन्दी मासिक पत्रिका का प्रकाशन
- जैन इतिहास, आगम एवं अन्य सत्साहित्य का प्रकाशन
- आचार्य श्री हस्ती आध्यात्मिक शिक्षण संस्थान
- अखिल भारतीय श्री जैन विद्वत् परिषद का संचालन
- वीतराग ध्यान साधना केन्द्र का संचालन

उक्त प्रवृत्तियों में दानी एवं प्रबुद्ध चिन्तकों के
रचनात्मक सक्रिय सहयोग की अपेक्षा है।

सम्पर्क सूत्र
मंत्री
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
दुकान नं. 182-183, के ऊपर, बापू बाजार
जयपुर-302003 (राजस्थान)
दूरभाष : 0141-2575997 फैक्स : 0141-2570753
ई-मेल - sgpmandal@yahoo.in